Chap-6

षष्ठ-अध्याय

दिनकर के काव्य में राष्ट्रीय तथा राजनीतिक चेतना

दिनकर के काव्य में राष्ट्रीय तथा राजनीतिक चेतना :

पूर्ववर्ती अध्यायों के विवेचन से प्रकट है कि दिनकर का आविर्भाव ही उस समय हुआ था, जबकि भारतीय जन-जीवन राजनीतिक उहापोह से आक्रान्त था तथा राष्ट्रीय चेतना अनेक विध आन्दोलनों तथा सशस्त्र क्रान्ति के प्रयासों से सतत् जाग्रत होती रही थी। इन परिस्थितियों का प्रभाव कवि हृदय दिनकर पर पड़ना तथा काव्य में तद्गत चेतना का अंकन स्वाभाविक ही कहा जा सकता है। तृतीय अध्याय में हम यह भी लक्ष्य कर चुके हैं कि उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम भाग से उत्थित एवं सतत् जाज्वल्यमान सांस्कृतिक पुनर्जागरण तथा उससे उत्प्रेरित राष्ट्रीय चेतना ने किस प्रकार हिन्दी की राष्ट्रीय काव्य-धारा को प्रेरित किया तथा हमारे आलोच्य कवि का काव्य उसका एक महत्त्वपूर्ण प्रतिफलन ही न होकर उसे ओज और दीप्ति से मंडित करता है।

दिनकर मूलत: कवि हैं। राजनीतिक दाँव-पेंच से मुक्त शुद्ध मानव हैं। राजनीतिक परिस्थितियों का उनके संवेदन शील हृदय पर अत्यन्त प्रभाव पड़ा, जिसे उन्होंने वाणी दी है, किन्तु वे किसी राजनीतिक विचारधारा के प्रतिबद्ध नहीं थे। उनकी चेतना गांधीवाद और मार्क्सवाद के बीच दोलायित होती रही है।[१] इसके साथ ही राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना से अनुप्राणित उनका निजी ऐतिहासिक अवबोध भी रहा है। ~~उनके~~ यही उनकी काव्य चेतना का मुख्य केन्द्र बिन्दु कहा जा सकता है। माखनलाल चतुर्वेदी भारतीय आत्मा, मैथिलीशरण गुप्त, सुभद्राकुमारी चौहान की रचनाओं में गांधी के अहिंसात्मक युद्ध का काव्यात्मक आख्यान था, किन्तु दिनकर की रचनाओं में गांधी-युग के उन युवकों की विद्रोही और उग्र मनोवृत्तियों की अभिव्यक्ति हुई, जिनका प्रतिनिधित्व कांग्रेस में और उसके बाहर जवाहरलाल नेहरू,

सुभाषचन्द्र बोस, जयप्रकाश नारायण आदि युवक कह रहे थे । दिनकर की राष्ट्रीय कविताएँ व उनके सम-सामयिक अन्य कवियों नरेन्द्र शर्मा, भगवतीचरण वर्मा, अंचल आदि की रचनाओं के साथ नहीं रखी जा सकती । क्योंकि इन कवियों की रचनाओं में मार्क्सवादी दर्शन की प्रधानता थी । जबकि दिनकर की रचनाओं में मार्क्सवाद का प्रभाव नहीं के बराबर था ।

दिनकर की राष्ट्रीय चेतना के विकास के मुख्य तीन सोपान हैं -

१- 'बारदोली विजय' से लेकर 'हुंकार' तक की राष्ट्रीय चेतना, जिसमें विद्रोह और क्रांति का स्वर प्रधान है ।

२- सामधेनी में व्यक्त राष्ट्रीय चेतना, जिसमें गांधी नीति, साम्राज्यवादी शोषण तथा अन्य महत्त्वपूर्ण राजनीतिक घटनाओं की अन्तर्वर्ती चेतना और कवि की प्रतिक्रियाओं का चित्रण हुआ है ।

३- स्वतंत्रता के पश्चात् की राष्ट्रीय चेतना, जो अन्तर्राष्ट्रीयता पंचशील और मानवतावाद की ओर अग्रसर होते-होते चीनी आक्रमण के द्वारा फिर युद्ध और संघर्ष की अनिवार्यता की ओर मुड़ गयी ।

राष्ट्रीय चेतना का उदय तब होता है जब किसी को यह अनुभूति होने लगती है कि देश का कण-कण हमें प्रिय है । इसका कोई अंश ऐसा नहीं है, जिससे हम सम्बद्ध न हों । इसका सारा अतीत, वर्तमान और भविष्य हमारा है । इस देश का प्रत्येक नागरिक अपना ही अभिभाज्य अंग है तथा इसके गौरव की रक्षा में ही आत्म गौरव है । इस प्रकार के देश-प्रेम को ही राष्ट्रीय भावना कह सकते हैं । राष्ट्रीय चेतना से अनुप्राणित कवि अपने देश के अतीत गौरव, उसके वर्तमान और भविष्य पर दृष्टिपात करता है तथा अपने देश के स्वर्णिम भविष्य की आशा कदवक रखता है ।

डा० सावित्री सिन्हा ने दिनकर की राष्ट्रीय चेतना के जो तीन सोपान दिखाये हैं[2] उनमें देश के अतीत गौरव, वर्तमान दशा और भविष्य के सभी चित्र अन्तर्मुक्त हो जाते हैं । अपनी कविता के विकास और स्फुरण के सम्बंध में दिनकर ने चक्रवाल की भूमिका में लिखा है- 'मेरी कविता के भीतर जो अनुभूतियाँ उतरीं, वे विशाल भारतीय जनता की अनुभूतियाँ थीं । वे उस काल की अनुभूतियाँ थीं, जिसके अंक में बैठकर मैं रचना कर रहा था । कवि होने की सामर्थ्य शायद मुझमें नहीं थी, यह शक्ति मुझमें भारतीय जनता की आकुलता को आत्मसात करने से स्फुरित हुई।[3] उनका यह कथन इस बात को प्रमाणित करता है कि उन्होंने अपनी युगीन परिस्थितियों से प्रभाव ग्रहण किया और उसके आधार पर सामाजिक, राजनीतिक चेतना को वाणी दी । उनके कवि का उदय उस समय हुआ। जब गांधी जी का प्रभाव भारतीय आकाश पर छाया हुआ था । किन्तु जैसा कि लक्ष्य किया जा चुका है उन्होंने जवाहरलाल नेहरू, सुभाषचन्द्र बोस, जयप्रकाश नारायण आदि से प्रभाव ग्रहण किया । फलत: उनकी राष्ट्रीयता गांधी युग की विद्रोही राष्ट्रीयता है । उस क्रांति की राष्ट्रीयता है । जिसका उदय अहिंसावाद और समझौते की नीति के विरोध में हुआ ।

यदि आधुनिक हिन्दी काव्य परंपरा के परिप्रेक्ष्य में विचार किया जाय तो दिनकर की राष्ट्रीय चेतना भारतेन्दु युग से चली आ रही राष्ट्रीयता के फलस्वरूप अपने चरम उत्कर्ष को प्राप्त करती हुई कही जा सकती है । भारतेन्दु युग में जिस चेतना का प्रादुर्भाव हुआ था, मैथिलीशरण गुप्त ने उसे 'भारत-भारती' के कल-कल निनाद से प्रवाहित किया । दिनकर जी ने तो इस राष्ट्रीय चेतना के सूक्ष्म से सूक्ष्म विषय पर स्पष्ट शब्दों में क्रान्तिमय एवं उद्घोष किया -

/ सुनूं क्या सिन्धु गर्जन में तुम्हारा
स्वयं युग धर्म की हुंकार हूं मैं ।
कठिन निर्घोष हूं भीषण अशनि का,
प्रलय-गाण्डीव की टंकार हूं मैं ।[4]

युग धर्म की हुंकार का यह आह्वान भीषण अशनि के निर्घोष तथा गाण्डीव की टंकार के रूप में अपने कवि-व्यक्तित्व को रूपायित करने वाली व उनकी उपरिनिर्दिष्ट राष्ट्रीय चेतना को प्रभावित करती है। उनकी युगीन चेतना के सामाजिक व आर्थिक पक्ष पर हम पूर्ववर्ती अध्याय में विस्तार से कह आये हैं। इसके अतिरिक्त उनकी राष्ट्रीयता के विभिन्न आयाम इस प्रकार हैं -(१) राजनीतिक संदर्भ(२) विदेशी शासन के प्रति विद्रोह(३) भारत और भारतीय परंपरा के प्रति गौरव की भावना,(४) स्वतंत्रता-परवर्ती राष्ट्रीय-चेतना(५)अन्तर्राष्ट्रीयता एवं मानवतावाद।

१) दिनकर के काव्य में राजनीतिक संदर्भ :

दिनकर के कवि जीवन का आरम्भ तब हुआ जबकि भारत परतंत्र था। उनका युवाकाल भारतीय इतिहास का वह युग था। जब भारत की राष्ट्रीयता और देशभक्ति ब्रिटिश साम्राज्यवाद से लोहा ले रही थी। पुनर्जागरण के बाद जनता में यह चेतना जगी थी कि सभी मनुष्य समान हैं और उन पर शासन करने के लिए किसी राजा की आवश्यकता नहीं। राजतंत्र के विरुद्ध प्रजातंत्र की भावना उठ खड़ी हुई। स्वाधीनता की प्रबल इच्छा से प्रेरित होकर जनता प्रजातंत्र की स्थापना के लिए विद्रोह करने लगी, और यही क्रांति के रूप में प्रतिष्ठित हुई। राजनीतिक क्रान्ति की प्रबल प्रेरणा शक्ति राष्ट्रीयता है। परतंत्र देश के समक्ष स्वतंत्रता ही लक्ष्य रहता है जिसे वे क्रांति द्वारा प्राप्त करना चाहते हैं। दिनकर भी इसी क्रांति के समर्थक हैं। उनका युग साहित्य में छायावाद युग के नाम से बहुत महत्त्व प्राप्त कर चुका था, किन्तु उनका ध्यान तो उस दीन-हीन सामाजिक, राजनीतिक व आर्थिक विभीषिकाओं की ओर लगा था, जो देश में व्याप्त थीं। इसीलिए वे स्वयं को चारण या वैतालिक के रूप में मानते हैं -

अमृत गीत तुम रचो कलानिधि ! बुनो कल्पना की जाली,
तिमिर-ज्योति की अमर भूमि का मैं चारण मैं वैताली ।[५]

यद्यपि दिनकर अपने युग के एक संवेदन शील कवि हैं परन्तु उनका कवि हृदय अपनी समस्त कोमलता को लेकर उनके अन्दर विद्यमान है । उनमें एक साथ भावुक कवि एवं गम्भीर चिंतक का सामंजस्य हो गया है । ` संस्कारों से मैं कला के सामाजिक पक्ष का प्रेमी अवश्य बन गया था, किन्तु मन मेरा भी चाहता था कि गर्जन-तर्जन से दूर रहूं और केवल ऐसी कविताएँ लिखूं, जिनमें कोमलता और कल्पना का उभार हो । यही कारण था कि जिन दिनों हुंकार की कविताएँ लिखी जा रही थीं । उन्हीं दिनों में `रसवन्ती` व `द्वन्द्वगीत` की भी रचना कर रहा था और अजब संयोग की बात कि सन् १९३९ में ही ये तीनों पुस्तकें एक वर्ष के भीतर प्रकाशित हो गयीं और सुयश तो मुझे हुंकार से मिला, किन्तु आत्मा अब भी मेरी रसवन्ती में बसती है ।--------राष्ट्रीयता मेरे भीतर से नहीं जन्मी, उसने बाहर से आकर मुझे आक्रान्त किया`[६] किन्तु यह ध्यान रहे कि `रसवन्ती` की पूर्ववर्ती रचना `हुंकार` की पूर्ववर्ती घोषणा उन्हें सिन्धु की गर्जन की उपेक्षा करके युग-चेतना के उद्घोषक के रूप में प्रतिष्ठित करती है । `हिमालय` कविता में वे हिम-गिरि के प्राकृतिक सौन्दर्य की ओर आकृष्ट न होकर उसमें ज्वालामुखी के विस्फोट के आकांक्षी होकर क्रांति का आह्वान करते हैं । अन्याय का भीषण रूप कवि की कोमलता को मिटाकर उनमें आक्रोश को जन्म देता है । युग की पुकार ही कवि की अभिव्यक्ति बन जाती है -

तेरे कण्ठ-बीच कवि ! मैं बनकर युगधर्म पुकार चुकी ।
प्रकृति पक्ष ले रक्त शोषिणी संस्कृति को ललकार चुकी ।[७]

दिनकर मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में क्रान्ति का आह्वान करते हैं। राजनीतिक क्षेत्र में भी उनका समर्थन सदैव क्रांतिकारियों को ही मिला। मध्यवर्ग में उस समय शासन के प्रति अविश्वास था और विदेशी राज्य के शिकंजों से मुक्ति पाने के लिए हर प्रकार का बलिदान करने को वह सन्नद्ध था। दिनकर उसी वर्ग का काव्य द्वारा प्रतिनिधित्व कर रहे थे। उनकी सहानुभूति आरंभ से ही उग्र दल के विरोधों एवं विद्रोहों के साथ की। 'रेणुका' में संकलित राष्ट्रीय गीतों, 'हुंकार' तथा 'सामधेनी' के प्रेरणा के बीज इन्हीं विरोधों को रूपायित करते हैं। गांधी के सविनय अवज्ञा आन्दोलन, अछूत आंदोलन, चर्खा और तकली प्रचार में नहीं। उन्होंने गांधी की पूजा सदैव अंगारों से की थी।[८] इतना ही नहीं कभी-कभी तो वे गांधी जी शान्ति और अहिंसा को युग धर्म के लिए प्रकारान्तर से अनावश्यक भी समझते थे। यहां कवि का यह कथन उल्लेखनीय है -

रे रोक युद्धिष्ठिर को न यहाँ,
जाने दो उनको स्वर्ग धीर,
पर फिरा हमें गाण्डीव गदा,
लौटा दे अर्जुन भीम वीर।[९]

दिनकर के कवि को विषम राजनीतिक परिस्थितियों का सामना करना पड़ा। 'रेणुका' के प्रारंभिक गीतों में उनका मन संशयग्रस्त ही रहा। किन्तु यह संशय अधिक समय तक नहीं बना रहा। युगीन चेतना ने कवि को जागरण का संदेश ही नहीं दिया अपितु दिशा निर्देश भी किया। 'रेणुका' में वे विराट गायक से वंशी का गायन करने का अनुरोध करते हैं तथा स्वयं के लिए श्रृंगी फूंकने का आदेश मांगते हैं। वह उस श्रृंगी के बल पर प्रभाती राग गाना चाहते हैं, जिससे प्रसुप्त त्रिभुवन के प्राण उद्वेलित हो उठे। 'रेणुका' में कवि का विप्लव समस्त धरा

को प्रलय के कराल गाल में विनष्ट कर नई सृष्टि के निर्माण की कल्पना कर रहा था। 'हुंकार' में आते-आते कवि की क्रांति भारतीय राजनीतिक सीमाओं से आबद्ध हो गयी। इसीलिए वे ज्वालाएँ सीमा में आबद्ध होकर और भी प्रचण्ड रूप धारण कर लेती हैं। 'हुंकार' की प्रचण्डाग्नि में वह सामर्थ्य विद्यमान है जो पराधीनता को सदा के लिए विनष्ट कर सकता है। कवि भारतीय युवकों में स्वाधीनता के लिए वह आग जलाना चाहता था, जिसमें विदेशी शासन भस्म हो जाय। 'रेणुका' में 'हिमालय' और 'शंकर' क्रान्ति के प्रतिनिधि हैं, किन्तु 'हुंकार' में क्रान्ति का प्रतिनिधित्व युवकों को करना है। जनता के हृदय की हर धड़कन सुनने वाली कवि की एक-एक पंक्ति में पराधीनता के प्रति उठता हुआ ज्वार है -

कलेजा मौत ने जब जब टटोला इस्तिहाँ में,
जमाने को तरुण की टोलियाँ ललकार बोली।
पुरातन और नूतन वर्ग का संघर्ष बोला,
विभा सा कौंधकर भू का नया आदर्श बोला।
नवागम शेर से जागी बुझी ठंडी चिता भी
नई शृंगी उठाकर वृद्ध भारत वर्ष बोला।
दरारें हो गयीं प्राचीर में बंदी भवन के।
हिमालय की दरी का सिंह भीमाकार बोला।[१०]

उनकी सभी राष्ट्रीय रचनाओं में स्वतंत्रता प्राप्ति ही मुख्य उद्देश्य है। इसके लिए वह अहिंसा को बल न देकर हिंसा का आह्वान करते हैं। वह नवयुवकों को [illegible] उद्बोधित करते हुए कहते हैं। युगगत राजनीतिक सन्दर्भ के दृष्टिकोण से इसे क्रांतिकारियों के प्रयासों से जोड़ा जा सकता है -

गरज कर बता दे सबको मारे, किसी के मरेगा नहीं हिन्द देश,
लहू की नदी तैरकर आ गया है, कहीं से हिन्द देश ।
लड़ाई के मैदान में चल रहे, लेके हम उसका उड़ता निशान,
खड़ा हो जवानी का झंडा उड़ा, अबे ओ मेरे देश के नौजवान ।[११]

राजनीतिक सन्दर्भों को प्रकाशित करनेवाली उनकी 'बागी' शीर्षक कविता शहीद यतीन्द्रनाथ दास की मृत्यु पर लिखी गयी थी । सम-सामयिक राजनीतिक सन्दर्भों को उजागर करने वाली उनकी अन्य कविता 'नई दिल्ली' के प्रति है, जिसमें सन् १६२६ की दिल्ली का सन्दर्भ स्वयं कवि ने ज्ञापित किया है । इस वर्ष नई दिल्ली का प्रवेशोत्सव तथा क्रांतिकारी प्रयासों का दमन दोनों को कविता का आधार बनाया गया है । स्वयं दिनकर जी ने 'दिल्ली' नामक संग्रह की भूमिका में लिखा है -'पहली कविता यद्यपि सन् १६३३ ई० में रची गई थी। किन्तु उसकी पृष्ठभूमि सन् १६२६ ई० की है । नई दिल्ली का प्रवेशोत्सव सन् १६२६ ई० में मनाया गया था । उसी वर्ष भगतसिंह पकड़े गये और लाहौर कांग्रेस में पूर्ण स्वाधीनता का प्रस्ताव पास हुआ । सन् तीस में सत्याग्रह आन्दोलन उठा और देश में दमन का चक्र जोरों से चलने लगा ।[१२] प्रस्तुत कविता में उक्त प्रवेशोत्सव कवि को उत्सव का आनन्द न देकर भारतमाता की परतंत्रता की टीस दे ~~सकता है~~ जाता है और वह देश के गौरवमय इतिहास के पृष्ठ खोलकर स्वतंत्रता की प्रेरणा देना चाहता है । इसमें गरीब मजदूरों और किसानों के प्रति जो संवेदना प्रस्तुत हुई है साम्यवादी प्रभाव की द्योतक न होकर उसका मूलकारण परतंत्रता माना गया है । राजनीतिक सन्दर्भ का सशक्त निदर्शन उनकी सन् १६४५ में रचित 'दिल्ली और मास्को' शीर्षक कविता में हुआ है । यह स्मरणीयहै कि सन् १६४२ ई० की क्रांति जिसमें गांधी जी ने 'करो या मरो' तथा'अंग्रेजों, भारत छोड़ो' का नारा दिया था, एक व्यापक युग-चेतना का वहन करती हुई कांग्रेस के पूर्ववर्ती आंदोलनों

से भिन्न थी । दूसरी ओर नेता जी सुभाषचन्द्र बोस के द्वारा स्थापित आजाद हिन्द फौज ने सैनिक प्रयासों के माध्यम से भारत को स्वतंत्र करने का तुमुल संग्राम छेड़ दिया था । ऐसी परिस्थिति में साम्यवादी गुट ने कांग्रेस को छोड़कर उक्त क्रांति का विरोध किया, जिसे अनेक नेताओं ने देश द्रोह की संज्ञा दी थी । साम्यवादी इस कारण इस क्रांति में नहीं जुड़े क्योंकि विश्वयुद्ध में रूस, इंगलैण्ड-अमेरिका के साथ था और उनके अनुसार ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध आन्दोलन करना मानवता विरोधी ~~हिटकलर~~ हिटलर का साथ देना था । दिनकर जी ने उक्त कविता में मानवता के रक्षण छद्म आवरण को चीरकर स्वातंत्र्य चेतना को पूरा-पूरा महत्त्व देकर अपनी राष्ट्रीय चेतना का साक्ष्य उपस्थित किया है । साम्यवादी दल की तात्कालिक राष्ट्र-विरोधी नीति का पर्दाफाश करते हुए वे उससे जनता को बचने की चेतावनी देते हैं -

प्रमित ज्ञान से जहाँ जाँच हो रही, दीप्ति स्वातंत्र्य समर की ।
जहाँ मनुज है पूज रहा जग को बिसार सुधि अपने घर की ।
जहाँ मृषा सम्बन्ध विश्व, मानवता से नर जोड़ रहा है ।
जन्मभूमि का भाग्य जगत् की, नीति शिला पर फोड़ रहा है ।।[१३]

अतः उपर्युक्त तथ्यों के प्रकाश में यह कहा जा सकता है कि काव्य के माध्यम से दिनकर का वैचारिक आन्दोलन दल-विशेष का अनुवर्ती न होकर राष्ट्रीय चेतना की उदात्त एवं तेजोदीप्त आभा को लिए हुए पूर्णतः राष्ट्रीय आन्दोलन है । जिसमें भारतीय संस्कृति तथा मानवता के यथार्थ-आदर्श दोनों समाविष्ट हैं । उनका एकमात्र उद्देश्य मातृभूमि को पराधीनता के पाश से मुक्त करना है । दिनकर की राष्ट्रीय भावनाएँ दो चेतनाओं को लेकर चलती हैं पहली 'शठे शाठ्यम् समाचरेत या विषस्य विषमौषधम् तथा दूसरा शोषणका विरोध ।कुरुक्षेत्र में कवि की यही

भावनाएँ प्रस्फुटित हुई हैं। कुरुक्षेत्र का चिन्तन इन्हीं आदर्शों को लेकर आगे बढ़ा है। युधिष्ठिर जिसमें गांधी जी के प्रतीक हैं तथा भीष्म उस क्रांतिकारी वर्ग के। `रेणुका` में `हिमालय` कविता में अहिंसात्मक नीति का विरोध इन्हीं प्रतीकों के माध्यम से कवि ने किया है। जिसे हम यथास्थान दृष्टिगत कर चुके हैं।

कांग्रेस की रीति-नीतियों से क्लांत दिनकर अर्जुन की तरह व्यामोह में फंसे जन-मानस को गीता के कृष्ण की तरह जो उपदेश देते हैं, वह तत्कालीन राजनीतिक सन्दर्भों के प्रति कवि की प्रतिक्रिया को रूपायित करता है। `कुरुक्षेत्र` में कवि का वही रूप प्रकट हुआ है, जिसमें क्षात्र धर्म की ललकार है। कांग्रेस की ढुलमुल नीति को वे विषहीन सर्प कहते हैं -

क्षमा शोभती उस भुजंग को, जिसके पास गरल हो।
उसको क्या जो दंत हीन विष रहित विनीत सरल हो।[१४]

स्वतंत्रता-परवर्ती राजनीतिक सन्दर्भों का द्योतन करने वाली उनकी सुप्रसिद्ध कविता `नेता` है, जिसमें नेताओं के भ्रष्टाचार का उद्घाटन करके जनमानस को सावधान किया गया है। इसी प्रकार `अरुणोदय`, `भूदान`, `एनार्की`, `समर शेष है`, `कांटों के गीत`, शीर्षक कविताएँ भी इसी कोटि में आती हैं। इनमें जहां गांधी और विनोबा के भूदान का यज्ञ का अभिनन्दन है तो चीनी आक्रमण के समय पुनः राष्ट्रीय आक्रोश भी है तथा `अरुणोदय` में स्वतंत्रता का भाव-भीना स्वागत भी है

बांगला देश की मुक्ति के लिए, युद्ध के समय इंदिरा जी ने जिस परिपक्वता, संकल्प और दृढ़ता का परिचय दिया, उससे प्रभावित होकर दिनकर जी ने उन पर बहुत अच्छी पंक्तियाँ लिखी थीं -

माँ, तुमने सदियों के बाद
विजय का मुकुट पहना है ।
जान देने वाले बड़े बेटे
तुमने कम पैदा नहीं किये ।
लेकिन यह मुकुट
एक बेटी का दिया गहना है ।
माँ, आशिष दो
कि तुम्हारी यह बेटी
खुश रहे, कायम रहे
शाद रहे ।
नहाते समय भी
उसके सिर के बाल न टूटें ।
और यह देश
सच्चे अर्थों में आजाद रहे ।[१५]

अत: समग्रतया मूल्यांकन के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि दिनकर अपने युग की राजनीतिक एवं राष्ट्रीय चेतना के प्रति पूर्णतया संवेदनशील रहे हैं । किसी भी विचारधारा के प्रति प्रतिबद्धता इन रचनाओं में नहीं पायी जाती । उनका कवि एक उन्मुक्त विहग के रूप में क्रांति के गीत गाता है और युग की बदलती हुई परिस्थितियों में सांस्कृतिक परम्परा से प्रेरणा ग्रहण ही नहीं करता, अपितु पाठकों में उसका संचार भी करता है ।

२- विदेशी शासन के प्रति विद्रोह :

उपर्युक्त विवेचन में यह दृष्टिगत किया जब जा चुका है कि दिनकर का युग

परतंत्रता का युग था । इसी परतंत्रता के लिए दिनकर की लेखनी आग उगलती रही है । समाज में व्याप्त प्रत्येक दीन-दशा के लिए कवि दिनकर का हृदय करुणा द्रवित हो उठा है। इसका मूल कारण वे राजनीतिक परतंत्रता मानते हैं । इसीलिए उनका सारा आक्रोश ब्रिटिश शासन के लिए प्रकट होता है । शोषकों के लिए उसके हृदय में घृणा है । वह उनके समूल उच्छेदन के लिए आपाद मस्तिष्क क्रांति का गायक है । यह पंचम अध्याय अध्यास में दृष्टिगत किया जा चुका है कि किस प्रकार अंग्रेजी शासकों ने सामाजिक अत्याचार करके भारत की आर्थिक स्थिति को खोखला कर दिया था । यहां पर केवल उसकी संक्षिप्त चर्चा विषयगत विवेचन की सुविधा के लिए की जाएगी ।

मनुष्य समाज में रहने के कारण एक राजनीतिक प्राणी है । वह स्वयं अपने शासक को चुनता है । वह राजनीतिक व्यवस्था पर राष्ट्र का निर्माण करना चाहता है । शासक के अत्याचारों से वह उसे हटा देना चाहता है । शासक के अत्याचारों से वह उसे हटा देना चाहता है । यदि वह बदलना न चाहे तो मनुष्य क्रांति का मार्ग अपनाता है ।शक्तिशाली शासन सत्ता निर्बल जनता का शोषण करती है । अंग्रेजी शासन भी कुछ इसी प्रकार का शोषण कर रहा था । ऐसे समय में कवि ने विदेशी-व्यवस्था से क्षुब्ध होकर क्रांति का आह्वान किया था । शोषण की वेदना से पीड़ित व्यथा को कवि इन शब्दों में अभिव्यक्ति देता है -

युगों से हम अनय का भार ढोते जा रहे हैं ।
न बोली तू अगर, हम रोज मिटते जा रहे हैं ।
पिलाने को रक्त कहां से लायें दानवों को ?
नहीं है क्या स्वत्व है प्रतिशोध का हम मानवों को ।। [१६]

क्रूर शासकों के ऐश्वर्यमय जीवन से जनता में क्रांति के बीज अंकुरित होने लगे, जिसे कवि ने इन शब्दों में मुखरित किया है -

रस्सों से कसे अनाथ पाप प्रतिकार जब न कर पाते हैं ।
बहनों की लुटती लाज देखकर काँप-काँप रह जाते हैं ।
शस्त्रों के भय से सब निरस्त आँसू भी नहीं बहाते हैं ।
पी अपमानों के गरल घूंट शासित जब होंठ-चबाते हैं ।
~~अनीतिकारी सत्ताधारी शासन के प्रति जनमानस के हृदय~~
जिस दिन रह जाता क्रोध मौन, मेरा वह भीषण जन्म लगना ।[१७]

अनीतिकारी सत्ताधारी शासन के प्रति जनमानस के हृदय में चिनगारी फूट चुकी है, भले ही वह ऊपर से शान्त दिखता हो, ब्रिटिश शासन के प्रति कवि ने जनमानस का वर्णन इन पंक्तियों में किया है -

जहाँ पालते हों अनीति पद्धति को सत्ताधारी ।
जहाँ सूत्रधार हो समाज के अन्यायी अविचारी ।
जहाँ खड्ग बल बने एक मात्र आधार शासन का ।
दबे क्रोध से भभक रहा हो हृदय जहाँ जहाँ जन,जन का ।
सम सहते-सहते अनय जहाँ भर रहा मनुज का मन हो ।
समझ का पुरुष अपने को धिक्कार रहा जन-जन हो ।
अहंकार के साथ घृणा का जहाँ द्वन्द्व हो जारी ।
ऊपर शांति तलातल में हो छिटक रही चिन्गारी ।।[१८]

कवि के अनुसार ऐसी क्रांति क्रूर शासक के रोके नहीं रुक सकती, काल भी उसे नहीं रोक सकता ।[१९] उनकी कविताओं में मिलनेवाला विदेशी शासन के प्रति विद्रोह केवल आर्थिक और सामाजिक सन्दर्भों से ही नहीं जुड़ा हुआ है, अपितु

उसका एक पक्ष ब्रिटिश शासन की साम्राज्यवादी नीति का भी है । राजनीतिक परतंत्रता की बेड़ी की कसक कवि को ही नहीं अपितु भारत के जन-जीवन में भी व्याप्त है । वे १९२९ की दिल्ली को अनाचार, अपमान, व्यंग्य की चुभती हुई कहानी मानते हुए विदेशी को गलबाँही देती हुई नारी के रूप में चित्रित करते हैं, जो विदेशी शासन के प्रति आक्रोश का सूचक है । [२०] इसी प्रकार उक्त कविता में यूरोपीय सभ्यता के विकृत प्रभाव को भी अंकित किया गया है। इसी प्रकार 'दिल्ली और मास्को ' कविता में विदेशी शासन के प्रति विद्रोह का आवाहन है । वे उसे राजधानी के रूप में भारत का अपमान मानते हुए कहते हैं -

दिल्ली राजपुरी भारत की, भारत का अपमान,

अंग्रेजी शासन के प्रति विद्रोह का अभियान उन्होंने अत्यन्त ओज और तेजोदीप्ति के साथ किया है -

दहक रही मिट्टी स्वदेश की
खौल रहा गंगा का पानी,
प्राचीरों में गरज रही है
जंजीरों से कसी जवानी
यह प्रवाह निर्भीक तेज का,
यह अजस्र जीवन की धारा,
अतवरुद्ध यह शिखा यज्ञ की
यह दुर्जय अभियान हमारा । [२१]

इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि दिनकर के काव्य में तत्कालीन राजनीतिक सन्दर्भों के कारण जो विरोध प्रकट हुआ है, वह अग्नि-स्फुलिंगों के

सदृश विदेशी आततायियों के विरोध में भी आक्रोश व्यक्त करता है। इसलिए इस सन्दर्भ में डॉ० देवीप्रसाद गुप्त का यह कथन सर्वथा समीचीन प्रतीत होता है- 'दिनकर जी की काव्य कृतियों में निरूपित युद्ध युद्ध-दर्शन कवि की एतद्विषयक बद्धमूल अवधारणाओं, युग जीवन के समुन्नत बोध के प्रतिफलन, सामयिक राजनीतिक परिवर्तनों, समकालीन परिवेश की आक्रोशमूलक प्रतिक्रियाओं, युग धर्म की पुकार और विश्वसनीय मानवीय आस्थाओं का समन्वित परिणाम है। दिनकर की काव्य-साधना का समारम्भ ही उस समय हुआ, जब जनमानस उत्कट राष्ट्रीय भावनाओं से आन्दोलित था। स्वतंत्रता की बलिवेदी पर सर्वस्व समर्पण की होड़ लगी हुई थी। क्रांति की अनुगूँज एक प्रबल उद्घोष बन चुकी थी। विरोध, विद्रोह-विध्वंस और विप्लव को लोगों ने अस्त्र के रूप में वरण कर लिया था। ऐसी परिस्थितियों में एक युवा कवि का क्रांतिकारी बन जाना सहज स्वाभाविक था।'[२२]

३-भारत और भारतीय परंपरा के प्रति गौरव की भावना :

'अतीत के मुकुर में राष्ट्र एवं जातियाँ अपने वर्तमान को संवारती हैं'[२३] अत: राष्ट्रीयता के सन्निवेश के लिए अतीत के प्रति गौरव आवश्यक हो जाता है। भारत का अतीत निश्चय ही इतना समृद्ध एवं गौरवशाली रहा है कि भारत की राष्ट्रीयता ने अतीत से प्रेरणा ग्रहण करके वर्तमान में उस शंख को फूँका है, जिसके निनाद में अतीत का वैभव सम्पन्न देश तथा उसकी अस्मिता की अनुगूँज थी। महाकवि दिनकर के काव्य में अतीत के आदर्शों में, वर्तमान की वीणा, भविष्य के भाग्य का निर्माण करती हुई स्पष्ट झलकती है। उनके भविष्य का भारत अतीत के आदर्शों पर खड़ा होगा। कवि दिनकर भारत के कण-कण से प्यार करते हैं। इसकी धूल में वह अतीत के गौरव को देखते हैं। 'रेणुका' में इसीलिए

वह मंगल आह्वान करते हुए अपने त्रिकालदर्शी व्यक्तित्व का परिचय देते हैं -

> दो आदेश फूंक दूं श्रृंगी, उठे प्रभाती राग महान ।
> तीनों काल ध्वनित हों स्वर में, जागे सुप्त भवन के प्राण ।[२५]

'रेणुका' के समस्त राष्ट्रीय गीत इतिहास और संस्कृति के आवरण में लिखे गये हैं । दिनकर ने इस संग्रह में अतीत को वर्तमान के चित्रपट पर बहुत ही आकर्षक और मनोमुग्धकारी ढंग से प्रस्तुत किया है । जिस पर हम विस्तारपूर्वक चतुर्थ अध्याय के अंतर्गत विचार कर चुके हैं । यह उल्लेखनीय है कि अतीत के चित्र से वे भारतीय संस्कृति की आत्मा को परिष्कृत व सशक्त बनाते हैं । अत: अतीत के स्वर्णिम पृष्ठों का चित्रण उन्होंने अपने समक्ष दो लक्ष्य रखकर किया है ।उनका पहला लक्ष्य है अतीत के स्वर्णिम और भव्य चित्रों को अंकित कर भारतीय जनता में स्वाभिमान और अतीत गौरव की भावना भरना, दूसरा उनका लक्ष्य है अतीत के माध्यम से वर्तमान दशा पर प्रकाश डालना तथा आशामय भविष्य की ओर संकेत करना ।

'हिमालय' कविता में दिनकर स्वतंत्रता सेनानी महाराणा प्रताप का स्मरण करते हुए भारत भूमि के अनेक क्षेत्रों के गौरवमय अतीत को एक साथ रखकर राष्ट्र की भावनात्मक एकता को प्रस्थापित सा करते हैं । कवि का हृदय अतीत की स्मृतियों में विशेष रूप से लगा हुआ था, किन्तु वह जब जब वर्तमान की ओर दृष्टि निक्षेप करता है उसकी वह अतीत-स्मृति वेदना और करुणा का संचार कर देती है ।'रेणुका' की कविताओं में जो अतीत के प्रति गौरव प्रकट हुआ है वह वर्तमान की करुणा तथा विवशता से जुड़कर पाठकों को इतिहास के माध्यम

से राष्ट्रीय बोध कराता है, प्राय: कवि उससे प्रेरणा ग्रहण करता-कराता आया, किन्तु उसे पलायनवादी भी कहा जा सकता है -

देवि ! दु:खद है वर्तमान की यह असीम पीड़ा सहना,
कहीं सुख इससे संस्मृति में है अतीत की रत रहना ।[२५]

यद्यपि इसमें पलायन का स्वर मुखरित हुआ है, किन्तु कवि की राष्ट्रीय चेतना आगे की पंक्तियों में फिर उसी गौरवमय इतिहास का स्मरण कराने से नहीं चूकती-

सम्प्रति जिसकी दरिद्रता का करते हो तुम सब उपहास ।
वहीं कभी मैंने देखा है मौर्य वंश का विभव विलास ।।[२६]

'पाटलिपुत्र की गंगा' में कवि का यह स्वर प्रभावशाली ढंग से व्यक्त हुआ है । गंगा के अश्रुओं को कवि ने अतीत के गौरव से पोंछने का सुन्दर प्रयास किया है ।[२७] इसमें समुद्रगुप्त तथा चन्द्रगुप्त प्रभृति वीरों और जन-नायकों के पराक्रम का प्रभावशाली गायन है, किन्तु इसके साथ भारतीय संस्कृति का वह उज्ज्वल चित्र भी अंकित है, जिसके समक्ष विश्व के विजेता भी नतमस्तक होते रहे हैं -

जगती पर छाया करती थी, कभी हमारी भुजा विशाल ।
बार-बार झुकते थे पद पर ग्रीक यवन के उन्नत भाल ।[२७]

इसी प्रकार 'मिथिला' शीर्षक कविता भारतीय संस्कृति की ज्वलंत प्रतीक है । कवि ने ध्वस्त मिथिला के अतीत के गौरवमय इतिहास का बड़ा ही आदर्श एवं भव्य चित्र अंकित किया है -

मैं ~~ब~~ क्षीणप्रभा मैं हत आभा, सम्प्रति भिखारिणी मतवाली ।
खण्डहर में खोज रही अपने उजड़े सुहाग की हूं लाली ।
मैं जनक कपिल की पुण्य जननि, मेरे पुत्रों का महा ज्ञान ।
मेरी सीता ने दिया विश्व की रमणी को आदर्श दान ।[२८]

~~क~~ अतीत की प्रेरणाओं को कवि वर्तमान में ढालने के लिए प्रयत्नशील है । इसी कविता में नालन्दा और वैशाली के खंडहरों तथा दिल्ली की गौरव समाधि पर भी भावुक कवि ने आंसुओं का अर्घ्य चढाया है ।[२९]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कवि अतीत का स्मरण तो करता है, परंतु उसकी दृष्टि वर्तमान समाज की दीन-हीन दशा को देखकर बहुत अधिक द्रवित हो उठी है । यह कवि की युग के प्रति जागरूकता का साक्ष्य उपस्थित करती है । वे प्राचीन महापुरुषों का आह्वान भी इसीलिए करते हैं कि वे पुन: जन्म लेकर इस शोचनीय अवस्था को दूर करें । 'बोधिसत्व' इसी प्रकार की कविता है । इसमें गौतम बुद्ध का स्मरण कर कवि ने अतीत के उस चित्र को ताजा किया है , जिसमें गौतम बुद्ध समता, शुचिता और मुदिता की स्नेहिल धारा में समस्त मानव जाति को किसी भेदभाव के बिना बहा ले गये थे । आज उसी दायित्व का निर्वाह गांधी जी ने किया तो उन्हें सवर्ण हिन्दुओं द्वारा किये गये आक्रामक प्रहार को सहना पड़ा । दिनकर इस कार्य की भर्त्सना करते हुए बोधिसत्व का पुन: आह्वान करते हैं -

जागो, गांधी पर किये गये नर पशुपतियों के वारों से,
जागो, मैत्री निर्घोष । आज व्यापक युग धर्म पुकारों से ।
जागो गौतम, जागो महान ।
जागो अतीत के क्रान्ति गान ।[३०]

क्रांति का आह्वान करते हुए दिनकर दीनों-दलितों की करुण दशा का चित्र अंकित करना नहीं भूलते । किसानों के आर्थिक शोषण और किसान आन्दोलन को दबाने के लिए किये गये अमानुषिक और नृशंस कार्यों का प्रतिशोध करने के लिए वह भूषण की भावरंगिणी और लेनिन की क्रांति चेतना का स्मरण करते हैं ।[३१]

अत: एतद्विषयक विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि दिनकर अतीत के ऐसे प्रेमी हैं जो वर्तमान जीवन के दैन्य और विषमता का विस्मरण नहीं कर सके । हम यह कह सकते हैं कि दिनकर का कवि हृदय ही राष्ट्र के लिए बना था, जिसका स्पन्दन राष्ट्र के लिए, उसकी उन्नति के लिए व अपनी संस्कृति का पुन: स्मरण कराने के लिए हुआ था । उन्नीसवीं शताब्दी का सांस्कृतिक पुन-जागरण यदि व्यवहार में लाया गया जागरण था तो दिनकर की कविता-कामिनी ने काव्य-कलेवर का रूप धारण कर इस संस्कृति की धारा को गतिशील बनाने तथा उसे उसी मूल चेतना के साथ प्रतिष्ठित करने में मूल्यवान योग दिया है, जिसे प्रकारान्तर से उनकी राष्ट्रीय चेतना ही कहा जा सकता है । सामाजिक और आर्थिक विषमता का जो चित्र उन्होंने खींचा है, वह भी उनकी राष्ट्रीय चेतना का ही एक पक्ष है । दूसरी ओर सांस्कृतिक अभिव्यक्ति के दृष्टिकोण से यदि विचार किया जाय तो यह राजनीतिक जीवन के सजग, संवेदनशील तथा सक्रिय पक्ष को उजागर करता है, क्योंकि संस्कृति जीवन की दिशा का ही निर्धारण नहीं करती, अपितु जीवन की व्यापक परिणति जो समाज के अभियानों संधानों, आशा-आकांक्षाओं, अनेकविध उद्दाम-संतुलित प्रयासों, रुचि-अभिरुचियों आदि में उसके सप्राण तत्व को भी प्रतिष्ठित करती है । अत: इस दृष्टिकोण से निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि सम-सामयिक भारतीय संस्कृति के राजनीतिक जीवन-पक्ष को हमारे आलोच्य कवि ने बड़ी सफलता के साथ उपस्थित किया है ।

यह उल्लेखनीय है कि स्वतंत्रता के पश्चात् भी उनकी राष्ट्रीय चेतना ने उन्हें सदैव सजग रखा। वे स्वतंत्रता के पश्चात् जन-मन की पीड़ा व असमानता को भी उसी प्रकार उसी जोश से व्यक्त करते हैं। जिस प्रकार उनकी स्वतंत्रता के पूर्व की चेतना का आक्रोश था, जैसा कि निम्नलिखित विवेचन से प्रकट है।

४-स्वतंत्रता परवर्ती राष्ट्रीय चेतना :

स्वतंत्रता एक अपूर्व उल्लास और नयी आशा-आकांक्षा भरे अन्त:करणों के साथ देशवासियों को प्राप्त हुई। उसके लिए जिसके हृदय में जितनी कसमसाहट थी, उतना ही उसे १५ अगस्त १९४७ ई० का दिवस आनन्दोल्लास के साथ गंभीर दायित्व बोध के साथ दिखायी पड़ा। राष्ट्र कवि दिनकर की एतद्विषयक चेतना को पूर्ववर्ती विवेचन के अन्तर्गत निर्दिष्ट किया जा चुका है। उनकी भावना की परिचायक निम्नलिखित पंक्तियाँ यहाँ उल्लेखनीय हैं -

आजादी नहीं चुनौती है यह बीड़ा कौन उठायेगा।
खुल गया द्वार सं०बके पर देश को कौन मंदिर तक पहुँचाएगा।
है कौन हवा में जो उड़ते इन सपनों को साकार करे।
है कौन उद्यमी नर जो इस खण्डहर का जीर्णोद्धार करे।
माँ का अँचल है फटा हुआ इन दो टुकड़ों को सीना है।
देखें देता है कौन लहू दे सकता कौन पसीना है।[३२]

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् विभाजित भारत के नव-निर्माण का सपना यहाँ संजोया गया है। यहाँ आकर दिनकर का स्वर राष्ट्रीय तो है ही, पर वह अपने देश की जनता व शासक दोनों से बहुत अपेक्षाएं रखता है। और जब उसकी

आशाओं पर तुषारापात हो जाता है तो वह आक्रोश जो पहले विदेशी शासन के प्रति था वह अपने देश के जनतंत्र के प्रति व्यक्त हो उठता है । इतर देश-वासियों की भाँति ही उनका मोह भंग हो जाता है जो स्वतंत्रता की पहली वर्षगाँठ के अवसर पर लिखी रचना में भलीभाँति व्यक्त है । इसमें कोई ठोस परिवर्तन के स्थान पर कोरे आश्वासन को गुलामी की नकल बढ़ाने वाला घोषित करके कवि ने अपनी प्रारंभ से ही गतिशील राष्ट्रीय चेतना को भास्वर किया है । इसी प्रकार सन् १९४८ में रचित 'नेता' शीर्षक कविता भी उक्त आक्रोश का ही प्रतिरूप है । अत: कहा जा सकता है कि 'रेणुका' से लेकर 'परशुराम की प्रतीक्षा' तक दिनकर एक ही ओज और तेज को लेकर भारतीय जनमानस के धरातल को आलोकित करने का प्रयत्न करते रहे हैं । उनके इस आलोक में कहीं उषा की सुनहरी आभा, कहीं मध्यान्ह की प्रचण्डता और कहीं अन्तर्राष्ट्रीय धरातल को आलोकित करने के उद्देश्य से सन्ध्या-कालीन शान्त आभा कुछ भिन्नता के दर्शन कराती सी प्रतीत होती है, किन्तु दिनकर स्वयं में एक रूप तेजस्वी दिनकर ही हैं । स्वतंत्रता के पश्चात् की उनकी राष्ट्रीय भावना इन शीर्षकों के अंतर्गत विभाजित की जा सकती है ।
(क) यथार्थवादी स्वर(ख) असन्तोष का स्वर(ग) क्रांतिकारी स्वर । जिन पर यहाँ क्रमश: विचार किया जा रहा है ।

(क) <u>यथार्थवादी स्वर :</u>

'बापू' दिनकर का स्वतंत्रता के समय का प्रकाशित काव्य है, किन्तु बापू की मृत्यु के बाद इसमें उनके निर्वाण को भी समाविष्ट कर लिया था । अत: इसमें स्वतंत्रता पूर्व व स्वतंत्रता के पश्चात की पृष्ठभूमि का समावेश हुआ है । इस काव्य में नोआखली की पृष्ठभूमि में साम्प्रदायिक विष का लम्बा इतिहास व्यक्त हुआ है । दिनकर ने इस काव्य की रचना उस समय की थी जब गांधी जी नोआखली की यात्रा कर रहे थे । दिनकर ने बापू की पूजा सदा अंगारों से की थी । वस्तुत:

गांधीवाद में उनकी आस्था थी भी नहीं, फिर वे उनकी आध्यात्मिक शक्ति को सर्वतोभावेन स्वीकार करते हैं। वे बापू जो साम्प्रदायिकता को मिटाने के लिए कृत संकल्प थे, उन्हीं बापू पर सहसा वज्रपात हुआ और दिनकर भी हिंसा से अहिंसा की ओर मुड़ गये। उनका सारा आक्रोश, क्रान्ति बापू की मृत्यु पर सहसा जैसे बह गया हो। ऐसा प्रतीत हो उठा, वे बापू के प्रति अपनी श्रद्धांजलि प्रकट करते हुए कह उठते हैं -

बापू सचमुच ही गये, निखिल भूमंडल का शृंगार गया।
बापू सचमुच ही गये, विकल मानवता का आधार गया।
यह लाश मनुज की नहीं, मनुजता के सौभाग्य विधाता ह की।
यह अवधपुरी के राम चले, वृन्दावन के घनश्याम चले।
शूली पर चढ़कर चले ख्रिष्ट, गौतम बुद्ध निष्काम चले।[33]

बापू की मृत्यु से कवि को हिन्दुत्व पर अविश्वास हो उठता है। हिन्दू जो सहिष्णुता, करुणा और अहिंसा को साथ लेकर इतिहास पर चरण रखकर आगे बढ़ा है। वह यदि इस प्रकार करुणा-मूर्ति-अहिंसा की प्रतिमूर्ति गांधी पर हाथ उठा सकता है तो इतिहास कहाँ जाएगा और इस धरती का भवितव्य क्या होगा।[34]

'नीलकुसुम' दिनकर का स्वतंत्रता के पश्चात् का पहला काव्य संग्रह है। वैसे इससे पहले 'नीम के पत्ते' प्रकाशित हुआ था। उसमें अधिकांश कविताएँ स्वतंत्रता पूर्व की है। कुछ कविताएँ स्वतंत्रता की वर्षगाँठ की है। जिनमें कवि का मुख्य ध्येय लोक-जीवन का सुधार है। इसमें रोटी और स्वाधीनता, पहली वर्षगाँठ, सपनों का धुँआ, व्यष्टि, पंचतिक्त, राहु, नेता, जनता कविताएँ व्यंग्य-प्रधान

राष्ट्रीय रचनायें हैं , जिनमें जन-जीवन की ओर ध्यान देने की बात नेताओं से कही गयी है । इसके पश्चात् `नीलकुसुम` में संगृहीत सभी कवितायें स्वातंत्र्योत्तर काल की हैं । इन रचनाओं को पढ़ने पर यह लगता है कि कवि की पहले की रचनाओं में क्रांति की जो प्रबल भावना थी, वह स्वातंत्र्योत्तर स्थिति में चिन्तन द्वारा संयमित हो गयी और अभी तक जो कवि राष्ट्रीय, राष्ट्रीय संस्कृति और यत्र-तत्र सौंदर्य की अभिव्यक्ति में अपनी प्रतिभा शक्ति का परिचय देता रहा । वह अब शनैः शनैः विश्व-मानव और विश्व-संस्कृति की ओर उन्मुख होने लगा । सामान्य मानव की बुभुक्षा, पीड़ा, नग्नता आदि से विकंपित हो उनके समाधान के पथ पर अग्रसर होने लगा । कवि को विश्वास है कि भारत अब भी अपनी अपार सांस्कृतिक परम्परा के बल पर विश्व की विभीषिका तथा जिघांसा-वृत्ति को दूर कर सकता है । `हिमालय का संदेश` कविता इसका सफल निदर्शन है, जिसकी कतिपय पंक्तियाँ यहां उल्लेखनीय हैं -

भारत एक स्वप्न, भू को ऊपर ले जाने वाला ।
भारत एक विचार, स्वर्ग को भू पर लाने वाला ।
भारत एक भाव, जिसको पाकर मनुष्य जगता है ।
भारत एक जलज, जिस पर जल का न दाग लगता है ।
+ + +
जहाँ कहीं एकता अखंडित, जहाँ प्रेम का स्वर है ।
देश-देश में खड़ा वहाँ, भारत जीवित भास्वर है ।।[३५]

(ख) असंतोष का स्वर :

कवि दिनकर ने स्वतंत्रता के बाद भी देश में फैली अराजकता देखी। अलग-अलग

राजनीतिक दलों का आलाप सुना । इसलिए उसकी अनुभूति व संवेदना बहुत तीव्रता के साथ हुई । भारत के इस यथार्थ करुण दृश्य को देखकर उनके हृदय में जनता व शासन दोनों के प्रति असंतोष व्यक्त हुआ है । जनता को अपने कर्तव्यों व अधिकारों के लिए सचेष्ट करते समय शासन के प्रति उनका आक्रोश और भी उग्र हो उठता है । 'जनतंत्र' में उनके प्यारे देश की अव्यवस्था उन्हें असह्य है -

गण जन किसी का तंत्र है ।
साफ बात यह है कि भारत स्वतंत्र है ।
भिन्नता संभाले तार-तार की ।
राज करती हैं यहाँ चैन से एनार्की ।[३६]

दिनकर जी का यह असंतोष सामाजिक व राजनीतिक दोनों क्षेत्रों में व्यक्त हुआ है । पूँजीपतियों के प्रति दिनकर का यह असंतोष स्वतंत्रता-पूर्व के शासकों के विरोध की तरह ही व्यक्त हुआ है । असंतोष जनित उनकी चेतावनी उस हिंस्र क्रांति से भारतीय समाज को बचाना चाहती है जो कभी हवा का झोंका पाकर प्रचण्ड रूप धारण कर लेगी -

हठी, तुम्हारे पापों से, फिर एक प्रलय आने वाला है ।
गांधी ने भूचाल किया, तूफान वही लाने वाला है ।[३७]

'कवि और समाज' शीर्षक कविता कवि की समाज के असंतोष को प्रकट करने वाली उच्च कोटि की कविता है । 'धूप और धुँआ' की कविताएँ भी इसी भाव को लिए हुए हैं । 'समर शेष है' कविता में कवि जनमानस को उद्बुद्ध करने के लिए प्रयत्नशील है । वह स्वतंत्रता के पश्चात् भारत की दीन-हीन, नंगी-भूखी

जनता को देखकर उनका कोमल स्वर अनायास ही कठोर बन जाता है -

कुंकुम ले पूजूँ किसे ? सुनाऊं किसको कोमल गान ।
तड़फ रहा आँखों के आगे भूखा हिन्दुस्तान ।।[३८]

उनकी मान्यता है कि जब तक समाज में ऊँच-नीच की खाई नहीं पटेगी, तब तक भारत में वास्तविक जनतंत्र की प्रतिष्ठा नहीं हो सकती । विषमता की काली जंजीरों को तोड़ने , समाज को अपने गरल से डसने वाले साम्प्रदायिक विषधर को निश्शेष करने की उनकी ललकार `समर शेष है` शीर्षक कविता में प्रतिध्वनित हुई है, जिसे उन्होंने स्वतंत्रता प्राप्ति के सात वर्षों बाद लिखा था और उस समय वे राज्य सभा के सदस्य थे । इन कविताओं में उनका ओज पहले की भाँति आवेशपूर्ण न होकर चिन्तन की भूमि पर स्थित है ।`तब भी आता हूं` तथा `जनतंत्र का जन्म` शीर्षक कविताओं में कवि का यह अवसाद अपने असंतोष को व्यक्त करता है । स्वतंत्रता के पश्चात् पंचवर्षीय योजनाओं द्वारा देश के औद्योगिक विकास का जो समायोजन एक महान आकांक्षा के साथ हुआ था, वह व्यवस्था में व्याप्त भ्रष्टाचार के कारण सफल न हो सकता । इस असफलता के चित्र `नए सुभाषित` की व्यंग्य भरी रचनाओं में देखे जा सकते हैं ।

उनकी कविता में मिलने वाले असंतोष के स्वर पर विचार करते समय हमारा ध्यान उनके इस कथन की ओर भी जाता है -`देश के नवनिर्माण का कार्य जो इतनी धीमी गति से चल रहा है, उसका मुख्य कारण यही है कि कार्याधिकारी देश की आकुलता से अपरिचित हैं ।`दिल्ली हमारी सारी शिराओं का केन्द्र है, लेकिन विषमता की बात यह है कि देश की बेचैनी केन्द्र को बेचैन नहीं कर पा रही है ------------ इस स्थिति से जो क्षोभ उठता है, वही इन कविताओं का मूल स्वर है ।`[३९] `हक की पुकार` और `भारत का यह रेशमी नगर` शीर्षक कविताओं में दिनकर जी ने देश में

अपेक्षित नव-निर्माण तथा आर्थिक विकास के अभाव और सर्वहारा वर्ग की निरन्तर प्रवर्धमान दरिद्रता आदि को लेकर जो असंतोष का उद्घोष किया गया है, वह कवि की एक ईमानदार राष्ट्रीय एवं जनवादी चेतना का परिचायक होने के साथ-साथ जन-साधारण के असन्तोष को भी प्रतिबिम्बित करता है। इनमें कवि ने शासक वर्ग का ध्यान बारम्बार दीन-हीन, किसान-मजदूरों और गाँवों की गिरी हुई दशा की ओर खींचना चाहा है। अर्थ- व्यवस्था के प्रति असंतोष की व्यंजना पर पूर्ववर्ती विवेचन में विचार किया जा चुका है। अत: समग्रतया मूल्यांकन के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुंचा जा सकता है कि कवि शासन का अनुवर्ती न होकर एक युगद्रष्टा के दायित्व का सफलतापूर्वक निर्वाह करता है। सम्भवत: उसका विश्वास है कि जब तक चिन्तन और अनुभूति के स्तर पर नव निर्माण, समता तथा ग्रामोत्थान की भूमिका का निर्माण न होगा, तब तक उक्त अवांछनीय स्थितियाँ नहीं समाप्त हो सकतीं।

/उपर्युक्त विवेचन से प्रकट है कि आर्थिक पक्षों पर दिनकर के असंतोष का स्वर विचार और तर्क से संयुक्त है, जिसमें यथार्थ बोध पूरी शक्ति के साथ वर्तमान है, किन्तु चीन के आकस्मिक आक्रमण से क्षुब्ध होकर कवि पुन: इस उसी क्रांतिकारी स्वर में बोलने लगा, जो मूलत: उनकी राष्ट्रीय चेतना का स्वर है। स्वयं उनके ही शब्दों में - 'गर्जन-तर्जन, हाहाकार और हुंकार को छोड़कर मैं अपेक्षाकृत शान्त मनोदशा में आ गया था, किन्तु शान्ति और सुकुमारता की जो वाटिका मैंने लगायी थी, उसमें अचानक ही 'हुंकार' और 'कुरुक्षेत्र' का कठोर कवि कूद पड़ा। जैसे 'कुरुक्षेत्र' काव्य अंग्रेजों को डराने के लिए नहीं, प्रत्युत भारतवासियों के ही चिन्तन को स्वच्छ और उत्तप्त बनाने के लिए लिखा गया था, उसी प्रकार 'परशुराम की प्रतीक्षा' भी चीन की निन्दा करने के लिए नहीं, भारतवासियों को सिखाने के लिए लिखी गयी थी कि हिंसा का सही रूप निन्द्य नहीं है। विशेषत: आत्मरक्षा में उठाया गया शस्त्र कभी भी पाप का यंत्र नहीं होता।'[४०] अत: कवि के इस पदन्यास पर स्वतंत्र रूप से विचार कर लेना यहां उचित होगा।

(ग) क्रांतिकारी स्वर :

'परशुराम' की प्रतीक्षा' में कवि का क्रांतिकारी स्वर पुन: उभरा है। कवि ने वस्तुत: तत्कालीन चेतना को वाणी दी है और हिंसा की खुली वकालत की है। वह जनता में क्षात्र-तेज को जगाने के लिए कृत-संकल्प है। इसीलिए वह परशुराम के लोहित कुंड में गिरे हुए कुठार की फिर से वज्र बनकर निकलने की प्रतीक्षा करता है। उसका यह विश्वास है -

निर्जर पिनाक हर का टंकार उठा है।
हिमवंत हाथ में लेकर अंगार उठा है।
ताण्डवी तेज फिर से हुंकार उठा है।
लोहित में था जो गिरा कुठार उठा है।[४१]

इस कविता में कवि 'हिन्दी चीनी भाई-भाई' के पूर्वकालीन नारे पर व्यंग्य करता हुआ कहता है कि अहिंसा, समता, सह-अस्तित्व आदि पंचशील के पुजारी भारत की रक्षा न कर सके। उसका कहना है कि बाहुबल की उपेक्षा के कारण ही चीन का आक्रमण हुआ है। प्रत्येक जाति का अपना अहं होता है और जब वह चोट खाता है तो आत्म गौरव के साथ वह पराक्रम का आश्रय लेता है -

जब किसी जाति का अहं चोट खाता है।
पावक प्रचण्ड होकर बाहर आता है।
यह वही चोट खाए स्वदेश का बल है।
आहत भुजंग है, सुलगा हुआ अनल है।[४२]

इस कविता में वीरता का आह्वान है और साथ ही एकता और दृढ़ता के साथ संकल्प पथ पर बढ़ने की प्रेरणा है। कवि की आवेशमयी वाणी में ऐसे तत्त्व

भी हैं जो स्थायी सिद्ध हो सकते हैं । अपनी राष्ट्रीय भावना में उसका स्वर इतना अधिक क्रांतिकारी होकर बह गया है कि कहीं- कहीं कटु भी हो गया है, किन्तु उसे हम उसका स्वदेश प्रेम ही कह सकते हैं क्योंकि विश्व-रंगमंच के कुटिल राजनीतिज्ञों को यह कल्पना तक न थी कि गांधी का देश लाल बहादुर के रूप में परशुराम-सा तेज भी धारण कर सकता है ।

अत: उपर्युक्त तथ्यों के प्रकाश में क्रांतिकारी स्वर प्रधान इन सम-सामयिक कविताओं को भी हम कवि दिनकर की ओज और पौरुष प्रधान क्रांतिकारी चेतना के अंग के रूप में ही स्वीकार कर सकते हैं । दिनकर के काव्य की राजनीतिक भावना का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष अन्तर्राष्ट्रीयता और मानवतावाद का है जो कि परवर्ती विवेचन का विषय है ।

अन्तर्राष्ट्रीयता एवं मानवतावाद :

आधुनिक युग में विश्व को दो महायुद्धों का सामना करना पड़ा, जिसकी विभीषिका ने विशेषकर यूरोपीय विचार दर्शन में मानवतावाद को जन्म दिया । संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना भी इसी की प्रतिक्रिया का परिणाम है । यों देखा जाय तो भारत की सांस्कृतिक परंपरा विश्व-बन्धुत्व और मानवता वाद की समर्थक रही है । आधुनिक विचारक ने देखा कि कट्टर राष्ट्रवाद कभी-कभी कितना घातक हो सकता है । अत: उन्होंने राष्ट्रीयता को अन्तर्राष्ट्रीयता से जोड़कर दोनों के बीच सामंजस्य के निर्माण का प्रयास किया । राष्ट्रपिता महात्मा गांधी एक साथ मानवतावाद और राष्ट्रीयता दोनों को लेकर प्रारम्भ से चले और भारत की राष्ट्रीय चेतना ने यह अनुभव किया कि किसी देश को पराधीन बनाना भी मानवतावाद के विरुद्ध है । भारतीय संस्कृति की चिन्ताधारा का मानवतावाद या विश्व बन्धुत्व

उदारता एवं समन्वय की चेतना से अनुप्राणित रहा है, जिसमें हमारे देश ने दूसरे देशों पर राजनीतिक विजय न प्राप्त करके सांस्कृतिक या विचारधारा की विजय प्राप्त की थी। दिनकर जी के एतद्विषयक विवेचन को हम पूर्ववर्ती अध्याय में विवेचित कर चुके हैं। उनकी अन्तर्राष्ट्रीयता को उक्त सांस्कृतिक पीठिका के आलोक में ही देखा जा सकता है, जिसे उन्होंने 'संस्कृति के चार अध्याय' में विस्तार के साथ विचारा है। यहां हम उनकी कविताओं में प्रस्तुत एतद्विषयक भावधारा का अनुशीलन करेंगे।

भारतीय संस्कृति की उपरिनिर्दिष्ट अन्तर्धारा को स्वीकार करके वे इसीलिए आज की अन्तर्राष्ट्रीयता में भारत के नेतृत्व की घोषणा इस प्रकार करते हैं -

किस अनागत लग्न की महिमा अरी।
कीर्ण पुण्य प्रकाश नव उत्कर्ष का।
दे रहा संदेश पीड़ित विश्व को।
श्रृंग चढ़ जय शंख भारत वर्ष का।[४३]

अन्तर्राष्ट्रीयता की प्रतिष्ठा में भारत के नेतृत्व को दिनकर जी सम्भवतः इसीलिए स्वीकार करते हैं क्योंकि वह यौरोपीय देशों की तरह दो-दो विश्व-युद्धों की विभीषिका से उकताहट या उसकी प्रतिक्रिया का परिणाम न होकर एक सुचिन्तित और सन्तुलित जीवन दृष्टि की देन है और कवि दिनकर जैसे सांस्कृतिक विचारक के लिए यह स्वाभाविक भी है।

आज प्रत्येक देश में स्वार्थवृत्ति को लेकर झगड़े हो रहे हैं। भाई-भाई का खून कर रहा है। जब तक इन प्रवृत्तियों का नाश नहीं होगा, तब तक देश में कैसे मानवतावाद आ सकता है। इसलिए पहले इस खाई को पाटना होगा। मानव-मानव

में समता तथा विकास के समस्त अवसर समान रूप से देने होंगे । `कुरुक्षेत्र` में मानव की उन हीन वृत्तियों की ओर संकेत है जो ईर्ष्या-द्वेष अहंकार आदि से प्रेरित हैं । और कवि इन्हें मानवता के विरुद्ध मानता है । वह भविष्य की सुनहरी रश्मि बिखेरते हुए अन्तर्राष्ट्रीय आभा से युक्त अपनी भावना को इस प्रकार व्यक्त करता है -

साम्य की वह रश्मि स्निग्ध , उदार
कब खिलेगी, कब खिलेगी विश्व में भगवान ।
व कब सुकोमल ज्योति से अभिषिक्त
हो सरस होंगे जली सूखी रसा के प्राण ।[४४]

`कवि का अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप` `राष्ट्र देवता का विसर्जन` कविता में विशुद्ध रूप से सर्जित हुआ है । भौगोलिक सीमाओं को लांघकर भारत का भावात्मक दृष्टिकोण, मानव मात्र की कल्याणमयी भावना से प्रेरित होकर अन्तर्राष्ट्रीयता की ओर उन्मुख होता हुआ स्पष्ट दिखायी पड़ता है । `हिमालय का सन्देश` शीर्षक कविता में कवि की राष्ट्रीयता तथा मानवतावादी अन्तर्राष्ट्रीयता के बीच समन्वय उपस्थित हुआ है । जो कि उपर्युक्त सांस्कृतिक परंपरा के अनुरूप ही है । इस सन्दर्भ में कवि का यह उद्गार द्रष्टव्य है -

किसी एक को नहीं बदलना होगा साथ सभी को ।
करना होगा ग्रहण शील, भारत का निखिल मही को ।
तब उतरेगी शांति मनुज का मन जब कोमल होगा ।
जहां आज है गरल वहां शीतल गंगा-जल होगा ।
देश-देश में जाग उठेंगे जिस दिन नर-नारी ।
साधना इस व्रत का भारी ।[४५]

उपर्युक्त विवेचन के निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि दिनकर का मानवतावादी दृष्टिकोण जहां सामाजिक-आर्थिक समानता से जुडा हुआ है वहां वह विश्व-मानव को एक मानने वाली भारतीय संस्कृति की विचारधारा से पूर्णतया अनुप्राणित है। उनका यह कथन इस सन्दर्भ में समीचीन कहा जा सकता है। 'धरती अपनी धुरी पर भी घूमती है और वह सूर्य के चारों ओर भी घूमती है। उसी प्रकार प्रत्येक व्यक्ति की भी दो गतियां होनी चाहिए। एक तो अपनी निजी वैयक्तिकता की धुरी पर घूमने के लिए दूसरी उस आदर्श के चारों ओर जिसमें समस्त मानव समाज समाहित है।'[४६] अत: कविताओं में अभिव्यक्त अकी मानवतावादी दृष्टि को स्वस्थ, संतुलित एवं सांस्कृतिक कहा जा सकता है। इसे डा० सावित्री सिन्हा ने ऐसी स्वस्थ राष्ट्रीयता की संज्ञा दी है जो राष्ट्र की सीमाओं से आगे बढ़कर विश्व-बन्धुत्व की भावना को जन्म देती है।[४७]

मूल्यांकन :

पूर्ववर्ती पृष्ठों में कवि दिनकर की राजनीतिक जीवन पक्ष से सम्बद्ध सांस्कृतिक चेतना का जो विवेचन किया गया है, उसके आधार पर इस तथ्य पर प्रकाश पडता है कि उनकी अन्तर्राष्ट्रीयता और मानवतावाद तो दूसरी ओर स्वतंत्रता परवर्ती तथा पूर्ववर्ती भावानुभूतियाँ ये सभी राष्ट्रीय-सांस्कृतिक सूत्र से जुडी हुई हैं। राष्ट्र राजनीतिक इकाई मात्र न होकर सांस्कृतिक इकाई ही प्रधानतया होता है और यह तथ्य दिनकर जी की यहां विवेचित कवितताओं में पूर्णतया प्रतिफलित है।

द्वितीयत: यह उल्लेखनीय है कि सामयिकता का चिरंतन सत्य युग-बोध बनकर उनकी कविता में उभरा है। उपर्युक्त वैशिष्ट्य के कारण दिनकर को मूलत: संस्कृति का ही कवि या उद्घोषक कहा जा सकता है क्योंकि समाज के सूक्ष्म से सूक्ष्म पक्ष को भी वे उतनी ही पैनी नजर से देखते हैं, जितनी कि उन्होंने परतंत्रता में आबद्ध देश को देखा गा। क्रांति के गीत गाता हुआ कवि सीमा के सजग प्रहरी

से किसी भाँति कम नहीं है । हिंसा और अहिंसा के द्वन्द्व में युद्ध की अनिवार्यता को वह सिद्ध करना ही चाहता है क्योंकि अहिंसा का पालन करना तभी तक उचित है जब तक कोई उसकी ओर तलवार बढ़ाकर वार नहीं करता । अत: उसका युद्ध-दर्शन एक शौर्यप्रिय चिन्तक का युद्ध-दर्शन ही कहा जा सकता है ।

इस अध्ययन का तीसरा उल्लेखनीय पक्ष यह है कि वे एक उत्साही उद्‌गाता ही न होकर विचारक भी है । राष्ट्र की परिस्थितियों तथा दुर्बलताओं की जो प्रतिक्रिया उसके हृदय में हुई, उसी की अभिव्यक्ति काव्य में मुखरित हुई है । इसी कारण प्राचीन भारत का गौरवमय इतिहास अपनी समस्त गरिमा के साथ उनके काव्य में उच्च शिखर पर प्रतिष्ठित हुआ है और उसकी संस्कृति से प्रेरणा ग्रहण कर वे आदर्शों की स्थापना करते हैं ।

अत: कुल- मिलाकर देखा जाय तो दिनकर के काव्य में अभिव्यक्त होने वाला राजनीतिक जीवन पक्ष एक प्रकार से उनकी राष्ट्रीय -सांस्कृतिक चेतना का एक महत्त्वपूर्ण अंग ही सिद्ध होता है । उनका युग- बोध ऐतिहासिक जीवन-दृष्टि, सम-सामयिक परिस्थितियों के प्रति प्रतिक्रिया आदि जिन पर यथा-स्थान विचार किया जा चुका है के विषय में डा० अमरेश नारायण शर्मा की निम्नलिखित पंक्तियाँ अत्यन्त सार्थक और सटीक कही जा सकती हैं -

राष्ट्र चेतना के हे प्रहरी, नवजागृति के उद्‌गाता ।
नवयुग के सपनों के स्रष्टा हे नवयुग के निर्माता ।।
अपनी लीक बनायी तुमने, युग को नव-युग बोध दिया ।
शुद्ध काव्य के अन्वेषी हे सत्यों का नव शोध किया ।
भारत के नव आदर्शों को तुमने नूतन प्राण दिया ।
दलित जाति को स्वाभिमान का नव उमंगमय गान दिया ।
स्वतंत्रता के नये मसीहा, देश प्रेम के उद्‌घोषक ।
नयी सृष्टि दी तुमने युग को मानवतावादी सर्जक ।[४८]

--

सन्दर्भ - सूची :

१- रामधारी सिंह दिनकर, चक्रवाल, भूमिका, पृष्ठ ५

२- डा० सावित्री सिन्हा, युगचारण दिनकर, पृ० ३२

३- दिनकर, चक्रवाल, भूमिका पृ० ३१

४- ,, हुंकार, पृ० ८६

५- द्द, द्रष्टव्य, वही- पृ० २१

६- ,, चक्रवाल, भूमिका, पृ० ३३

७- दिनकर, हुंकार, पृ० ८४

८- डा० सावित्री सिन्हा, युगचारण दिनकर, पृ० ४६-४७

९- दिनकर, रेणुका, पृ० ७

१०- दिनकर, हुंकार, पृ० २२

११- दिनकर, सामधेनी, पृ० ७२

१२- दिनकर, दिल्ली, भूमिका .

१३- दिनकर, सामधेनी, पृ० १०७

१४- दिनकर, कुरुक्षेत्र, पृ० ३५

१५- शिवसागर मिश्र, दिनकर एक सहज पुरुष, पृ० ७७

१६- दिनकर, हुंकार, दिगम्बरि, पृ० १३

१७- दिनकर, वही, पृ० ७३

१८- वही, कुरुक्षेत्र, पृ० २२

१९- वही, धूप और धुंआ, पृ० ७०

२०- दिनकर, दिल्ली, पृ० ३

२१- द्रष्टव्य, वही, पृ० १२

२२- डा० देवीप्रसाद गुप्त, राष्ट्रकवि दिनकर और उनकी साहित्य साधना, पृ० ५५

२३- डा० सुनीति, दिनकर के काव्य में राष्ट्रीय भावना, पृ० ७७

२४- दिनकर, रेणुका, मंगल आह्वान, पृ० ख

२५- दिनकर, वही, पाटलिपुत्र की गंगा, पृ० २७